विक्रम संवत-२०३६, भाद्र शुक्ल - ३, शुक्रवार, तारीख १२-९-१९८०
वचनामृत -३७८ प्रवचन-३१

इसमें १६० पृष्ठ है। तीसरा पैराग्राफ है। **निजस्वरूपधाम में...** पहला आया। ३७८ का तीसरा पैराग्राफ। दो पैराग्राफ चले हैं। **निजस्वरूपधाम में...** अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान जिसकी सत्ता में है, मौजूदगीरूप वही है। अनन्त ज्ञान, ज्ञानस्वरूप है परन्तु वह ज्ञान अनन्त है। उसकी कोई मर्यादा नहीं है। ऐसा आनन्द। उसकी सत्ता क्षेत्र थोड़ा, असंख्य प्रदेश में परन्तु गुण अनन्त अपरिमित गुण जिसमें है, ऐसा निजस्वरूपधाम। निजस्वरूपधाम। आहा..! **रमनेवाले मुनिराज को भी पूर्ण वीतरागदशा का अभाव होने से विविध शुभभाव होते हैं...** उनको भी विविध शुभभाव तो होते हैं। आहाहा!

उनके महाव्रत,... यह शुभभाव। **अट्ठाईस मूलगुण,...** यह शुभभाव, **पंचाचार,...** व्यवहार। व्यवहार पंचाचार। बाकी निश्चय पंचाचार भी है। प्रवचनसार। पहले शुरुआत में निश्चय पंचाचार (आते हैं)। और यह व्यवहार पंचाचार शुभभाव। **स्वाध्याय,...** शास्त्र का स्वाध्याय करना, वह भी शुभभाव है। **ध्यान इत्यादि सम्बन्धी...** ध्यान अर्थात् आत्मा का विचार, विकल्प। ध्यान अर्थात् निर्विकल्प नहीं। परन्तु अन्दर मैं ध्यान करूँ। चैतन्य आनन्द स्वरूप है। ऐसी जो विकल्पदशा उसको यहाँ ध्यान कहते हैं। **इत्यादि सम्बन्धी शुभभाव आते हैं...** आहाहा! वेदन में भी शुभभाव है। वेदन में शुद्धभाव और शुभभाव का वेदन है। अशुभ का भी थोड़ा वेदन है। परन्तु वेदन का आलम्बन नहीं है। जिसका आलम्बन (है), उसका वेदन नहीं है। जिसका वेदन है, उसका आलम्बन नहीं है। आहाहा! शुद्धपर्याय, शुभभाव, अशुभ वेदन में है। शुद्ध वेदन भी है, अशुभ और शुभ का वेदन है। वेदन का अवलम्बन नहीं है, वेदन का आलम्बन नहीं है। वेदन का आलम्बन नहीं और जिसका आलम्बन है, उसका वेदन नहीं है। आहाहा! ध्रुवस्वरूप। स्वधाम कहा न? निजस्वरूपधाम में। रहना भले वहाँ रहे, उसका वेदन नहीं है। चन्दुभाई! वेदन पर्याय का है। **निजस्वरूपधाम में रमनेवाले...** ऐसा कहा न? मुनिराज को ऐसे शुभभाव आते हैं।

जिनेन्द्रभक्ति-श्रुतभक्ति-गुरुभक्ति के उल्लासमय भाव भी आते हैं। उल्लास, प्रेम और उल्लास दिखने में भी आते हैं।

हे जिनेन्द्र! पद्मनन्दी आचार्य कहते हैं। पद्मनन्दी मुनि। **आपके दर्शन होने से, आपके चरणकमल की प्राप्ति होने से, मुझे क्या नहीं प्राप्त हुआ ?** है तो पर। परन्तु ऐसा भी व्यवहार आता है। परन्तु वह व्यवहार अवलम्बन करने लायक नहीं है। आहाहा! अवलम्बन करने लायक तो एक निजधाम शुद्ध स्वरूप (है)। ऐसी चीज़ मुनि को भी आती है, ऐसा कहते हैं। हे नाथ! **मुझे क्या नहीं प्राप्त हुआ ?** यह तो व्यवहार आया। आपकी प्राप्ति हुई, प्रभु! **मुझे क्या नहीं प्राप्त हुआ ?** यह तो वेदन की, शुभभाव की वेदन की दशा की बात है। आहाहा! उस समय भी जिसका वेदन नहीं, उसका आलम्बन तो कायम रहता है। ध्रुव का आलम्बन तो कायम रहता है। भले वह वेदन में न आवे। वेदन में ध्रुव आता नहीं। आहाहा! और वेदन में पर्याय आती है, उसका आलम्बन नहीं।

यह शुभभाव आता है, हे प्रभु! **आपके दर्शन होने से, आपके चरणकमल की प्राप्ति होने से, मुझे क्या नहीं प्राप्त हुआ ?** ऐसा कहते हैं। क्या नहीं प्राप्त हुआ? वह तो विकल्प है। वेदन में तो विकल्प है। समझ में आया? परन्तु उस समय भी आलम्बन तो ध्रुव का है। आपके चरणकमल प्राप्त हुए। मुझे क्या नहीं प्राप्ति हुई? यह तो एक शुभभाव का वेदन है तो वह बात आती है। परन्तु अन्तर में जो चीज़ है, जिसका वेदन नहीं, परन्तु जिसका आलम्बन एक क्षण हटता नहीं... आहाहा! जिसका आलम्बन एक समय हटता नहीं। जिसके वेदन में चाहे तो शुभ वेदन हो, शुद्ध का वेदन हो, अरे..! अशुभ का भी थोड़ा भाव आ जाए। मुनि को भी आर्तध्यान आ जाए। पंचम गुणस्थान में तो रौद्रध्यान भी आ जाए। वेदन है, आलम्बन नहीं। आहाहा!

आधार प्रभु एक समय में निज स्वरूपधाम, उसका अवलम्बन और आधार तो कायम एक ही रहता है। आहाहा! जैसी दशा में आते हैं। प्रभु! आपके दर्शन से मुझे क्या नहीं हुआ? ऐसी भाषा भी आती है, विकल्प भी आता है। फिर भी उसका अवलम्बन नहीं। आहाहा! अवलम्बन में तो अन्दर प्रभु ज्ञायक वस्तु ज्ञायक की धारा चलती है, उसका वेदन है, आलम्बन ज्ञायक का है। शुभ-अशुभ का भी नहीं और शुद्ध का भी आलम्बन नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ है।

आप मिलने से मुझे सब कुछ मिल गया।' ऐसे अनेक प्रकार से श्री पद्मनन्दी आदि मुनिवरों ने जिनेन्द्रभक्ति के स्त्रोत बहाये हैं। प्रवाह बहाया है। **ऐसे-ऐसे अनेक प्रकार के शुभभाव मुनिराज को भी हठ बिना आते हैं।** शुभ नहीं लाऊँगा तो मैं दुर्गति में जाऊँगा, ऐसी हठ नहीं, ऐसा लक्ष्य भी नहीं है। आहाहा! वह तो ऐसा सहज भाव, शुद्ध के अवलम्बन की पूर्णता नहीं होने से, शुद्ध की पूर्णता द्रव्य की नहीं होने से ऐसा भाव वेदन में आता है। फिर भी वेदन की मुख्यता नहीं (होती)। आहाहा! समझ में आया? मुख्यता तो भगवान द्रव्यस्वभाव, निज स्वरूपधाम (की है)। आहाहा! निज स्वरूपधाम। भले असंख्य प्रदेश हों, परन्तु असंख्य प्रदेश में भी अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुण विराजते हैं। उसका एकरूप, अनन्त गुण का एकरूप, उसका आलम्बन ऐसी दशा में भी, शुभभाव की दशा में भी, अरे..! कभी अशुभ परिणाम आता है, मुनिराज को अशुभ तो गिनने में आया नहीं। उन्हें आर्तध्यान होता है, फिर भी गिनने में नहीं आया है। गृहस्थ को गिनने में आया है। परन्तु गृहस्थ को भी अशुभभाव के काल में भी वेदन भले उसका हो, वेदन में आलम्बन नहीं है। आहाहा! आलम्बन तो वेदन नहीं है, उस चीज़ का आलम्बन है। वेदन नहीं है, उस चीज़ का आलम्बन (होता है)। वेदन है, उस चीज़ का आलम्बन नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

द्रव्य और पर्याय, दो के बीच (बात है)। पर्याय का वेदन और द्रव्य का आलम्बन। वेदन का आलम्बन नहीं और द्रव्य का-ध्रुव का वेदन नहीं। आहाहा! दो चीज़ भिन्न है। पर से तो भिन्न है ही। प्रवचनसार की १०१ गाथा ली न? उत्पाद, ध्रुव के कारण नहीं। आहाहा! उत्पाद, ध्रुव के कारण नहीं और व्यय, उत्पाद के कारण नहीं, और उत्पाद, ध्रुव के कारण नहीं, परन्तु ध्रुव, उत्पाद के कारण नहीं। आहाहा! १०१ गाथा, प्रवचनसार। भगवान की दिव्यध्वनि का सार। आहाहा! उत्पाद-व्यय का परिणाम आता है। क्योंकि तीन मिलकर उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्, तीनों मिलकर सत् है। फिर भी उत्पाद-व्यय सत्, उसका आलम्बन नहीं। आहाहा! उसी की चीज़ में उत्पाद-व्यय का आलम्बन नहीं है। आलम्बन तो निज धाम का ही है। आहाहा!

यह कहते हैं, हठ बिना शुभभाव आ जाते हैं। आलम्बन तो ध्रुव शुद्ध का ही है। **साथ ही साथ ज्ञायक के...** देखा! आया। **साथ ही साथ ज्ञायक के उग्र आलम्बन से...**

आलम्बन तो उसका है। आहाहा! ऐसे भाव में भी साथ ही साथ, साथ ही साथ। आलम्बन पीछे और शुभभाव पहले, ऐसा भी नहीं। साथ ही साथ। शुभभाव के साथ में ही, आहाहा! **ज्ञायक के उग्र आलम्बन से मुनियोग्य उग्र ज्ञातृत्वधारा भी...** आहाहा! ज्ञायकस्वभाव की अवलम्बन दशा के कारण ज्ञातृधारा भी सतत चलती है, ऐसे शुभभाव के काल में भी (चलती है)। आहाहा! ज्ञातृधारा, यह परिणति है, पर्याय है, परन्तु शुभभाव के काल में भी ज्ञायक की ज्ञातृधारा चलती है। आहाहा! **सतत चलती ही रहती है।** आहाहा! निरन्तर शुभ -अशुभभाव के साथ में, साथ में, आगे-पीछे नहीं, साथ में मुनियोग्य ज्ञातृधारा (चलती ही रहती है)। आहाहा! आलम्बन तो ध्रुव (का है), परन्तु ज्ञातृधारा परिणति-पर्याय है। ज्ञातृधारा, वह उत्पाद-व्यय की पर्याय है। आहाहा! वह भी सतत चलती रहती है। आहाहा!

साधक को—मुनि को तथा सम्यग्दृष्टि श्रावक को... दोनों को। साधक अर्थात् दो-मुनि अथवा सम्यग्दृष्टि श्रावक। **जो शुभभाव आते हैं, वे ज्ञातृत्वपरिणति से विरुद्धस्वभाववाले होने के कारण...** परिणति से विरुद्ध, हों। आलम्बन तो त्रिकाल ज्ञायक का है। उसके अवलम्बन से ज्ञातृधारा चली, निर्मल धारा चली, उसके साथ शुभभाव आदि भी है। **विरुद्धस्वभाववाले होने के कारण...** दोनों का विरुद्ध स्वभाव है। आहाहा! पर्याय में, हों! त्रिकाली का अवलम्बन है, परन्तु परिणति में ज्ञातृधारा से विरुद्ध शुभभाव विरुद्ध भाव है। आहाहा! ज्ञातृधारा ज्ञायक की परिणति है - पर्याय है। उसके साथ शुभभाव है, परन्तु वह विरुद्ध है। आया न? **ज्ञातृत्वपरिणति से विरुद्धस्वभाववाले होने के कारण उनका आकुलतारूप से—दुःखरूप से वेदन होता है,...** आहाहा! ज्ञायक के अवलम्बन से ज्ञायक परिणति जो पर्याय उत्पन्न हुई, उसका वेदन सुखरूप है और उसके साथ जो शुभभाव आया, उसका वेदन विरुद्ध आकुलता है। आहाहा! एक समय में दो (भाव)। एक समय में तीन। ज्ञायक का अवलम्बन, उस अवलम्बन की धारा, उससे शुभभाव विरुद्ध धारा। तीनों साथ में चलते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग।

उनका आकुलतारूप से—दुःखरूप से वेदन होता है,... ज्ञातृधारा की परिणति की अपेक्षा से, अवलम्बन तो ज्ञायक का है, उसका तो वेदन है नहीं, उसके आलम्बन से जो निर्मल ज्ञातृधारा शुद्ध परिणति-धर्मधारा जो प्रगट हुई, उससे शुभभाव विरुद्ध भाव है। आकुलतारूप से - दुःखरूप से वेदन होता है। आहाहा! शुभभाव आकुलता-दुःखरूप।

समयसार में आता है। समयसार में है न ? अध्यवसान आदि दु:खमय है। जितने अध्यवसाय विकल्प उठते हैं, उसे दु:ख में डाला है। आहाहा! वह प्रभु में है नहीं, उसकी शुद्ध परिणति में वह है नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात बहुत, भाई! ज्ञायक त्रिकाल में तो है नहीं। परन्तु त्रिकाल की धारा से जो ज्ञातृधारा परिणति-पर्याय प्रगट होती है, वह ध्रुवधारा है। आहाहा!

चैतन्य त्रिकाली की धारा तो ध्रुवधारा है। उसके अवलम्बन से उत्पन्न हुई, वह अध्रुवधारा है। परन्तु वह आनन्द और सुखरूप है। उसके साथ शुभराग है, उसकी भी साथ में धारा है परन्तु वह दु:खरूप है। आहाहा! इसमें विरोध आता था न ? दीपचन्दजी सेठिया। ज्ञानी को दु:ख होता ही नहीं, (ऐसा मानते थे)। दु:ख वेदे, वह तीव्र कषायवाला अज्ञानी वेदे। दु:ख का वेदन नहीं होता, ऐसा कहते थे। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जब तक वीतरागता न हो, तब तक तीन कायम चलते हैं। त्रिकाल का अवलम्बन, उसकी धारा परिणति निर्मल और शुभ या अशुभ में से कोई भी एक भाव। आहाहा! और उस शुभ-अशुभभाव का वेदन दु:ख। आत्मा ज्ञायक आनन्दमय है, तो आनन्दमय के अवलम्बन से उत्पन्न हुई, यहाँ ज्ञातृत्वधारा कहा, वह आनन्दधारा है। आहाहा! ज्ञायकभाव लिया न ? तो ज्ञायक के कारण ज्ञातृत्वधारा लिया। आनन्दस्वरूप लो तो वह आनन्दधारा है। ज्ञानस्वरूप लो तो ज्ञानधारा है। श्रद्धास्वरूप लो तो समकितधारा है। वीतरागस्वरूप लो तो वीतरागधारा है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात। पैसे में यह कब सुना है ? आहाहा! तीन लेंगे, नीचे तीन लेंगे।

हेयरूप ज्ञात होते हैं,... धर्मी को शुभभाव आता है, परन्तु हेयरूप भासता है, दु:खरूप भासता है। वेदन में दु:ख है। आहाहा! अकेला हेय है, ऐसा नहीं है। परन्तु साथ में वेदन भी नहीं है। अकेला वेदन भी नहीं, साथ में हेय भी है। वेदन तो निर्मल परिणति का भी है और यह मलिन परिणाम का भी वेदन है। परन्तु एक हेय है। आहाहा! परिणति है और वेदन है, इसलिए हेय है, ऐसा नहीं। परिणति तो निर्मल धारा भी है। आहाहा! शुद्ध चैतन्यवस्तु भगवान, उसके अवलम्बन से, उसके ध्येय से जो ध्यान की निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई, वह पर्याय है। उसके साथ-साथ शुभराग होता है, पहले शुभ की बात ली है। पहले शुभाशुभ लिया। प्रथम पंक्ति, इस ओर। १६० पृष्ठ पहली लाईन **गृहस्थाश्रम सम्बन्धी शुभाशुभ परिणाम होते हैं।** प्रथम पंक्ति। १६० पृष्ठ पर प्रथम पंक्ति। **गृहस्थाश्रम**

सम्बन्धी शुभाशुभ परिणाम होते हैं। फर्क है ? पृष्ठ में फर्क है। गुजराती है ? ठीक। यह हिन्दी है। पहले बात ली है। शुभाशुभभाव, शुभाशुभ परिणाम होते हैं। गृहस्थाश्रम में शुद्ध, शुभ और अशुभ तीनों होते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **हेयरूप ज्ञात होते हैं, तथापि उस भूमिका में आये बिना नहीं रहते।** आहाहा! भूमिका नीचे की दशा है। स्वामी कार्तिकेय में तो ऐसा आता है कि ऐसी शुद्ध परिणति हो, परन्तु केवलज्ञानी की परिणति जैसी नहीं है तो वहाँ ऐसा कहा है, हे प्रभु! हम तो पामर हैं। वस्तु से प्रभु है, पर्याय से पामर है। ऐसा पाठ है। स्वामी कार्तिकेय। प्रभु! कहाँ चारित्र की परिणति और कहाँ केवल (ज्ञान) की अवस्था! सम्यग्दर्शन की परिणति तो पामर है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि की तो बात ही क्या करनी ? पामर के साथ, उत्कृष्ट पामर के साथ (क्या मिलान करना) उत्कृष्ट शक्ति प्रगट हुई हो उसके साथ मिलान करके कहना है। मिथ्यादृष्टि को किसके साथ मिलान करे ? आहाहा! और वहाँ तक चला है न ? षट्खण्डागम में। सम्यक्धारा, त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप से सम्यग्ज्ञान धारा आयी, उसमें जो मतिज्ञान है, वह केवलज्ञान को बुलाता है। ऐसा पाठ है, षट्खण्डागम में। मतिज्ञान जो निर्मल प्रगट हुआ, त्रिकाली ज्ञायकभाव में तो ध्रुवता है। उसके अवलम्बन से जो मति-श्रुतज्ञान उत्पन्न हुआ, वह पर्याय-परिणति है। वह पर्याय ऐसा कहती है, केवलज्ञान को बुलाओ, केवलज्ञान आओ, केवलज्ञान आओ। आहाहा!

मुमुक्षु :- पामर पर्याय प्रभु को बुलाती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ। पामर पर्याय .... को बुलाती है। हमें उत्कृष्ट ... लेना है। ऐसा कहते हैं, पामर पर्याय उत्कृष्ट ... वाली पर्याय को बुलाती है ? पामर ही बुलाती है। परम पुरुषार्थ बुलाये कहाँ से ? परम पुरुषार्थ तो पूर्ण हो गया। आहाहा! केवलज्ञानी भगवान को तो परम पुरुषार्थ पूर्ण हो गया। आहाहा! बुलाती हैं, उसका अर्थ ही यह हुआ कि हमारी परिणति बहुत छोटी है। हे नाथ! आपकी परिणति बड़ी है। हमारी परिणति ज्ञान, सम्यग्दर्शन की परिणति आपकी परिणति के पास तो पामर है। आहाहा! शुभभाव की तो बात ही क्या करनी ? आहाहा! ऐसी बात है।

साधक की दशा... अब लेते हैं। **साधक की दशा...** सम्यग्दर्शन से साधक की दशा उत्पन्न होती है। फिर चौथे, पाँचवें, छठे आदि सब। अन्तर में निर्मलानन्द प्रभु शुद्ध

चैतन्यस्वरूप, उसके आश्रय से साधकपना जो प्रगट हुआ, वह साधकदशा **एकसाथ त्रिपुटी (-तीन विशेषताओंवाली) है...** आहाहा! क्या है? साधक की दशा-धर्मी की दशा चौथे, पाँचवें, छठे आदि एकसाथ त्रिपटी - तीन विशेषताओंवाली है। **एक तो, उसे ज्ञायक का आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्य के प्रति जोर निरन्तर वर्तता है,...** आहाहा! ज्ञायक अकेला जानन स्वभाव जो अन्तर्मुख में पूर्ण है, पर्याय में बाहर में आया नहीं, ऐसा प्रभु अन्दर... आहाहा! **उसे ज्ञायक का आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्य के प्रति जोर निरन्तर वर्तता है,...** आहाहा! बड़े का आश्रय कभी छोड़ते नहीं। संसार में भी बड़े का आश्रय छोड़ता नहीं। आहाहा!

बड़ा प्रभु ध्रुव, उसका आश्रय कभी छूटता नहीं। **उसे ज्ञायक का आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्य के प्रति जोर निरन्तर वर्तता है,...** आहाहा! धर्मी की दृष्टि में जो ज्ञायक आया है। उसमें पर्याय में जोर द्रव्य की ओर निरन्तर वर्तता ही है। पर्याय का झुकाव द्रव्य की ओर ही वर्तता है। आहाहा! निर्मल पर्याय समीप में वर्तती है। राग असमीप-दूर वर्तता है। आहाहा! **ज्ञायक का आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्य के प्रति जोर...** जोर अर्थात् पुरुषार्थ उस ओर गति करता ही है। करना पड़ता नहीं। भेदज्ञान हुआ तो पुरुषार्थ उस ओर चलता ही है। आहाहा!

जिसमें अशुद्ध तथा शुद्ध पर्यायांश की भी उपेक्षा होती है;... निरन्तर जहाँ आत्मा के अवलम्बन में जोर वर्तता है, ध्रुवधाम में जहाँ जोर वर्तता है, वहाँ **अशुद्ध तथा शुद्ध पर्यायांश की भी उपेक्षा...** वहाँ तो अशुद्ध परिणाम जो शुभ-अशुभ, या शुद्ध परिणाम वीतरागी पर्याय की उपेक्षा होती है। अपने त्रिकाल स्वभाव की अपेक्षा से शुद्धता की भी उपेक्षा (वर्तती है), अपेक्षा नहीं है। अपेक्षा त्रिकाल की, उपेक्षा वर्तमान पर्याय की। आहाहा! सूक्ष्म बात है। चैतन्य त्रिकाली सनातन अस्तिवाला तत्त्व, उसकी ओर जोर तो कायम वर्तता ही है। आहाहा! और **जिसमें अशुद्ध तथा शुद्ध पर्यायांश की भी उपेक्षा होती है;...** अशुद्ध—शुभाशुभराग, यहाँ शुभ विशेष है और शुद्ध पर्याय-सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि निर्मल पर्याय जो उत्पन्न हुई, उसकी भी शुद्धात्मद्रव्य के आश्रय से, जोर से उपेक्षा वर्तती है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म।

जहाँ शुभ की तो उपेक्षा है ही, परन्तु शुद्ध पर्याय की भी उपेक्षा है। त्रिकाली

भगवान ध्रुव स्वरूप की अपेक्षा जहाँ हुई, उसका आलम्बन हुआ, वहाँ शुभ-अशुभभाव की तो उपेक्षा ही है। आहाहा! वह पहले कहा कि आता है, होता है, कहते हैं—हे नाथ! मुझे आप मिले तो क्या नहीं मिला? भाषा में सब आता है, भाव भी शुभ ऐसा होता है। आहाहा! वह पहले आ गया है। परन्तु... आहा..! वेदन में अशुद्ध और शुद्धपर्याय की उपेक्षा रहती है। वेदन है, वेदन तो दोनों का है, शुद्ध और अशुद्ध दोनों का वेदन है। परन्तु द्रव्य की-ज्ञायक की दृष्टि के आलम्बन से शुद्ध और अशुद्धपर्याय दोनों की उपेक्षा (वर्तती है), अपेक्षा नहीं। थोड़े में बहुत भर दिया है। अपेक्षा एक त्रिकाल की। चिदानन्द भगवान अनन्त गुण का धाम, अनन्त शान्ति का स्थान, उसके अवलम्बन से शुद्धाशुद्ध पर्याय (की) उसके (ज्ञायक के) अवलम्बन के आगे उपेक्षा है। उसकी दरकार नहीं है। अपेक्षा नहीं, उपेक्षा है। आहाहा! बड़ी कठिन बात।

शुद्ध पर्याय की भी उपेक्षा होती है। दोनों। अशुद्ध की तो होती है। आहाहा! क्योंकि दृष्टि का विषय तो द्रव्यस्वभाव है। त्रिकाली द्रव्यस्वभाव... आहाहा! एक अकेली दृष्टि झुकी है, ऐसा नहीं, अनन्त पर्याय का अंश अन्दर झुका है। एक ही पर्याय अन्दर झुकी है, ऐसा नहीं। क्यों? कि जितने गुण हैं, उतनी प्रतीति करने में, अनुभव करने में अनन्त गुण है, उन सबका अंश प्रगट होता है। अनन्त जितने गुण हैं, उतने सब गुण का अंश प्रगट होता है। तो सम्यग्दर्शन की प्रगट होता है, द्रव्य के अवलम्बन से अकेली सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बातें। धर्म की बात। शशीभाई! आहाहा!

दूसरा, शुद्ध पर्यायांश का सुखरूप से वेदन होता है;... उपेक्षा दोनों की (होती है)। शुद्ध पर्याय और अशुद्ध पर्याय दोनों की उपेक्षा। अपेक्षा एक की भी नहीं। परन्तु वेदन में अन्तर है। **शुद्ध पर्यायांश का सुखरूप से वेदन होता है;...** शुद्ध पर्याय जो उत्पन्न हुई, निर्मल धर्म समकितधारा, उसका सुखरूप से वेदन होता है। **और तीसरा, अशुद्ध पर्यायांश —जिसमें...** आहाहा! यहाँ तो अकेला शुभभाव लिया है। अशुद्ध पर्याय का अंश, **जिसमें व्रत,...** वह अशुद्ध है। **तप,...** विकल्प है, वह अशुद्ध है। **भक्ति...** अशुद्ध अंश है। **आदि शुभभावों का समावेश है...** इसमें अकेले शुभभाव लिये हैं। अशुभभाव गौण करके। आहाहा! एक पंक्ति समझनी कठिन पड़े। आहाहा!

अपेक्षा त्रिकाल की, उपेक्षा दो की-शुद्धपर्याय और अशुद्ध। वेदन में दोनों में अन्तर। शुद्धपर्याय का सुखवेदन, अशुद्ध की पर्याय का दु:खवेदन। है? **और तीसरा, अशुद्ध पर्यायांश—जिसमें व्रत,...** उसका अशुद्ध वेदन है। आहाहा! **तप,...** अशुद्ध वेदन है। तप है, वह विकल्प है। निश्चयतप नहीं। व्यवहारतप-यह उपवास करना, परलक्ष्यी वह सब अशुद्ध पर्यायांश है। अशुद्ध दशा की वर्तमान अवस्था का अंश है। **भक्ति...** वह अशुद्ध पर्याय का अंश है। **आदि शुभभावों का समावेश है,...** आहाहा! **उसका—दु:खरूप से,...** आहाहा! व्रत, तप, भक्ति आदि शुभभावों का दु:खरूप से **उपाधिरूप से वेदन होता है।** आहाहा! अशुभ को नहीं लिया। शुभ लिया। समझ में आया? ऐसा वीतराग का मार्ग। वीतरागभावस्वरूप वीतरागभावस्वरूप प्रभु, उसमें से वीतरागभाव प्रगट होता है। अपूर्ण प्रगट होता है, वह साधक है; पूर्ण प्रगट होता है, वह साध्य है। तीनों वीतराग। आहाहा!

द्रव्य-वस्तु का पूर्ण स्वरूप अकेला बिल्कुल वीतरागस्वरूप है। जिसमें राग का सम्बन्ध कुछ भी नहीं है। और उसके आश्रय से प्रगट होनेवाली जो साधकदशा, वीतरागभाव का अंश है और पूर्ण केवलज्ञान हुआ, वहाँ पूर्ण वीतरागता है। तीनों में वीतरागता आती है, कहीं राग नहीं आता। आहाहा! समझ में आता है? भाषा तो सरल है, परन्तु भाव... आहा...! वीतराग प्रभु त्रिकाली वीतरागनाथ, उसके मार्ग में तीनों में वीतरागता आती है। वस्तु वीतरागस्वरूप, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट हो, वह वीतरागी समकित प्रगट होता है। सराग समकित नहीं।

इसका भी विवाद करते हैं। नीचे सराग समकित है, पीछे वीतराग समकित है (-ऐसा वे कहते हैं)। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का अंश वीतराग है। वीतराग त्रिकाली स्वरूप में से उसके अवलम्बन से प्रगट हुआ। है स्वतन्त्र। पर्याय को ध्रुव की भी अपेक्षा नहीं। ऐसा १०१ गाथा, प्रवचनसार में (आया)। उत्पाद को ध्रुव की अपेक्षा नहीं। आहाहा! यहाँ लक्ष्य आश्रय लिया है, ... लक्ष्य भी कर्तापने स्वतन्त्रपने लक्ष्य लिया है। शुद्धपर्याय द्रव्य का आश्रय करती है, परन्तु वह पर्याय कर्तापने स्वतन्त्र कर्तापने लक्ष्य करती है। द्रव्य है, इसलिए निरालम्बन से, मैं निराधार हूँ, ऐसे नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

प्रत्येक द्रव्य में समय-समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव धारा तीनों वर्तती है। परन्तु

तीनों में किसी को किसी की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! उत्पाद को व्यय की अपेक्षा नहीं; व्यय को उत्पाद की अपेक्षा नहीं; उत्पाद को ध्रुव की अपेक्षा नहीं; ध्रुव को उत्पाद की अपेक्षा नहीं। ओहोहो! ऐसा स्वरूप पहले तो सुनना मुश्किल पड़े। सुनने मिलता नहीं। एकान्त है, एकान्त है, ऐसा कहकर (निकाल देते हैं)। बात सच्ची है, एकान्त ही है।

प्रमाण में नय जो निश्चय है, वह एकान्त ही है। एकान्त निश्चय न हो तो प्रमाण हो जाए। आहाहा! क्या कहा? द्रव्य और पर्याय होकर प्रमाण है। नय सम्यक् एकान्त है। एक ओर पर्याय झुकी है, वह सम्यक् एकान्त ही है। आहा..! सम्यक् एकान्त में पर्याय आ जाए तो सम्यक् एकान्त रहता नहीं। आहाहा! सम्यक् एकान्त, निश्चय सम्यक् एकान्त ही है। व्यवहार पर्याय है, वह जाननेलायक है। व्यवहार से है। नहीं है, ऐसा नहीं। नय है, वह तो विषयी है। विषयी का विषय तो होता ही है। दोनों नय विषयी है अर्थात् विषय करनेवाला है। विषय करनेवाला है तो उसका विषय तो है ही। व्यवहारनय का विषय तो है, आदरणीय नहीं। आहाहा! बड़ा कठिन काम। यह पुस्तक तो बाहर आ गयी है। पूरी पढ़ी है न? पूरी पढ़ी? आहाहा!

साधक को वह **दुःखरूप से, उपाधिरूप से वेदन होता है।** आहाहा! व्रत, तप, भक्ति आदि शुभभाव होते हैं, परन्तु वह उपाधिरूप, दुःखरूप, पराश्रय से; पर से नहीं। शास्त्र में ऐसा शब्द बहुत आता है कि निमित्तवश, पर के वश, ऐसा शब्द आता है। पर से नहीं। पर के वश। स्वयं स्वतन्त्र पर के वश होकर विकार करता है। निमित्त विकार करवाता है, वह बात है नहीं। शुभ-अशुभभाव कर्म से हुआ है, ऐसा है नहीं। समयसार में टीका में बहुत आता है। परवश, पर के वश, निमित्तवश, निमित्त के वश। निमित्त के वश का अर्थ (यह कि) अपनी पर्याय स्वतन्त्र निमित्त के वश होती है। निमित्त को छूती नहीं। निमित्त को छूती नहीं। निमित्त राग को छूता नहीं। परन्तु राग निमित्त के आश्रय से, लक्ष्य वहाँ चला जाता है। आहाहा! भले उसे छुए नहीं, छुए नहीं, स्पर्श करे नहीं, फिर भी लक्ष्य करता है। आहाहा! ऐसी बात है।

यहाँ वह कहा, आहा..! **साधक को शुभभाव उपाधिरूप लगते हैं—इसका ऐसा अर्थ नहीं है कि वे भाव हठपूर्वक होते हैं।** आहा..! क्या कहा? धर्मी को शुभभाव आते हैं तो वे उपाधिरूप लगते हैं तो हठ से आया है, (ऐसा नहीं है)। उपाधिरूप है न?

दु:खरूप है न ? तो जबरन हठ से आ गया है, ऐसा नहीं। आहाहा.. ! क्या कहा ? **साधक को शुभभाव उपाधिरूप लगते हैं—इसका ऐसा अर्थ नहीं है...** उपाधिरूप लगते हैं, दु:खरूप लगते हैं, परन्तु उसका ऐसा अर्थ नहीं है कि वह शुभभाव हठपूर्वक होते हैं। अपनी पर्याय में सहज पुरुषार्थ की कमजोरी से अपने में होता है। कोई कर्म के निमित्त से, कोई संयोग के हठ से (नहीं होता)। आहाहा!

नारकी जीव में भी इतनी ठण्डी और गमी है, ठण्डी-गर्मी के कारण उसको दु:ख नहीं है। उस ओर के झुकाव से उसको दु:ख है। ठण्डी और उष्णता तो आत्मा को छूते ही नहीं। आहाहा! फिर भी उसका ठण्डी-उष्णता का दु:ख है। उसका अर्थ क्या ? आहाहा! भगवान आत्मा ठण्डी-गर्मी को छूता नहीं। परन्तु ठण्डी-गर्मी की ओर लक्ष्य करता है, अवलम्बन लेता है, वह दु:ख है। आहाहा! अग्नि यहाँ छूती है, उसका दु:ख नहीं है। अपनी पर्याय में अपने कारण से वहाँ परमाणु उष्ण होता है, वह दु:ख है। अपने कारण से। अग्नि का स्पर्श हुआ तो परमाणु उष्ण हुआ, ऐसा है नहीं। आहाहा! आया ?

साधक को शुभभाव उपाधिरूप लगते हैं—इसका ऐसा अर्थ नहीं है... वह शुभभाव पर के कारण हठ से (होते हैं)। आहाहा! अपनी पर्याय में करना नहीं है, फिर भी निमित्त के आधीन होकर... निमित्त से होता है, ऐसा है नहीं। ऐसा अर्थ है नहीं। ... सहज ही क्रमबद्ध में... आहाहा! क्रमबद्ध में वह परिणाम आने का काल है तो सहज आता है। आहाहा! विकार को सहज कहते हैं। उसका हेतु, कोई निमित्त के कारण से विकार हुआ, कर्म आता है, वहाँ प्रतिकूल संयोगपना है; इसलिए वहाँ दु:ख हुआ—ऐसा है नहीं। आहा.. ! क्योंकि एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य की पर्याय को छूती नहीं। आहाहा! नारकी में मारे-काटे, वह दु:ख लगे। वहँ दु:ख नहीं है। दु:ख की दशा पर ओर झुक जाती है और अशुद्धता उत्पन्न करता है, वह दु:ख है। आहाहा! हठ से होती है, ऐसा नहीं।

यों तो साधक के वे भाव हठरहित सहजदशा के हैं,... देखो! वह तो उस समय की पर्याय क्रमबद्ध में आती है, जानते हैं। कर्ता होते नहीं। दु:ख वेदते हैं। आहाहा! एक अपेक्षा से कर्ता होता नहीं, एक अपेक्षा से कर्ता है। ४७ नय, प्रवचनसार। समकिती कर्ता है। किस अपेक्षा से ? परिणमन की अपेक्षा से कर्ता है। परिणमता है न ? अपने कारण से परिणमता है, पर के कारण से नहीं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)